ब्रह्म स्वरूप विमर्श : "ज्योतिषां ज्योतिः"

पीयूष मिश्र

शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
ईमेलः piyushmishra38@gmail.com

श्रुति एवं स्मृति ग्रन्थों में सृष्टि का मूल कारण परंब्रह्म को माना गया है। सृष्टि–उत्पत्ति का मूलकारण होने से इसके तेजोमय पारमार्थिक स्वरूप का ज्ञान करना परम श्रेय है। अभेदवादी आचार्यों की दृष्टि में चैतन्य ही ब्रह्म का स्वरूप है जिसकी अनन्तता सर्वसिद्ध है। श्रुतियाँ ब्रह्म को आत्मा पद से इंगित करती हुई उसकी सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता एवं जगत्कारणता को बतलाती हैं–

"तस्मात्सर्वज्ञं ब्रह्म जगतः कारणम्"।[1]

जो बृहत्तम है वही ब्रह्म है– **"बृहणात् ब्रह्म"।**[2] ब्रह्म शब्द **'बृह'** बृद्धौ धातु **'मनिन्'** प्रत्यय से निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है–सर्वव्यापक, विभु, सर्वशक्तिमान व नित्य। संसार की सकल प्रत्यक्ष होने वाली वस्तुओं में व्यभिचार (परिवर्तन) देखा जाता है जबकि परमात्मतत्व त्रिकालबाधित, देश–काल, परिच्छेद से शून्य है–

"यद्विषया बुद्धि न व्यभिचरति तत् सत्"।[3]

ब्रह्मतत्व तीनों कालों में एक सा बना रहता है–

"अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः"।[4]

सत् होने के साथ वह ज्ञानस्वरूप भी है। अद्वैत वेदान्त में ज्ञान आत्मा का स्वरूप है, उसका गुण या धर्म नहीं है। जैसे उष्णता अग्नि का स्वरूप है वैसे ही ज्ञान आत्मा का स्वरूप है। श्रुतियों द्वारा प्रमाणित अनुभव है कि ज्ञान और आत्मा अभिन्नवत् है। ज्ञान दो प्रकार के अर्थों को व्यंजित करता है–प्रथम आत्मा का स्वरूपस्थ ज्ञान तथा द्वितीय वाह्य रूप घट–पटादि विषयक अनित्यज्ञान। लौकिक एवं पारमार्थिक दृष्टि से इन दोनों में भेद है–

"दृष्टिरिति द्विविधा भवति–लौकिकी पारमार्थिकी चेति।
तत्र लौकिकी चक्षुःसंयुक्ता अन्तःकरणवृत्तिः।
या त्वात्मनोः दृष्टिः अग्न्युष्णप्रकाशादिवत्,
सा च दृष्टः स्वरूपत्वान्न जायते विनश्यति च"।[5]

वस्तुतः घट–पटादि संयुक्त अनित्यज्ञान भी चेतना के प्रकाश से प्रकाशित होकर हमारे बुद्धि के विषय बनते हैं। बुद्धि में घटाकारित, पटाकारित जो वृत्तियाँ व्याप्त हैं वास्तव में उनका स्वरूप अचेतन है फिर भी स्वतः संवेद्य, ज्ञानस्वरूप यह आत्मा ही इन विषयों,

Scanned with CamScanner

प्रवृत्तियों का अधिष्ठान् है जो प्रत्यक्चैतन्य के रूप में अन्तः सन्निविष्ट् है। लौकिक वृत्तिज्ञान अर्थात् जागतिक क्षणिक अनुभव को प्रकाशित करने वाला इनका साक्षी चैतन्य स्वरूप आत्मा ही स्वयं प्रकाश, अपरोक्षतत्व व संवित् ज्ञान रूप ब्रह्म ही है। उसे ही रूपब्रह्म, कार्यब्रह्म, कारणब्रह्म, शान्तब्रह्म, शब्दब्रह्म, सौन्दर्यब्रह्म, नादब्रह्म, परंब्रह्म इत्यादि नामों से कहा जाता है।

वह परम पुरुष आदित्यरूप, चन्द्ररूप, वागरूप, अग्निरूप तथा आत्मरूप ज्योति वाला है। प्रथम चार ज्योति रूपों में वह ब्रह्म बैठता है, सब ओर गमन करता है, जागतिक संचरण का कारण बनता है। इन सभी ज्योतियों में आत्मज्योति विलक्षण है। आदित्य तथा चन्द्रमा के अस्त होने पर, वाक व अग्नि के शान्त होने पर यह पुरुष आत्मज्योति वाला होता है

अद्वैत वेदान्त में चैतन्य को समझने के लिए प्रदीप्त प्रकाश का विम्ब गृहीत किया गया है। वह तत्त्व किस ज्योतिवाला है? याज्ञवल्क्य ऋषि कहते हैं–कि वह परम पुरुष आदित्यरूप, चन्द्ररूप, वाग्रूप, अग्निरूप तथा आत्मरूप ज्योति वाला है। प्रथम चार ज्योति रूपों में वह ब्रह्म बैठता है, सब ओर गमन करता है, जागतिक संचरण का कारण बनता है। इन सभी ज्योतियों में आत्मज्योति विलक्षण है। आदित्य तथा चन्द्रमा के अस्त होने पर, वाक व अग्नि के शान्त होने पर यह पुरुष आत्मज्योति वाला होता है–

"अस्तमित आदित्ये चन्द्रमस्य स्तमिते शान्तेऽग्नौ शान्तायां वाचि"।[6]

इसकी चर्चा गीता शास्त्र में परमधाम विमर्श के परिप्रेक्ष्य में अवलोकनीय है–

"न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम"।[7]

आचार्य शंकर कहते हैं कि जिस प्रकार प्रकाश को प्रकाशित होने के लिए प्रकाशान्तर की आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार ज्ञानात्मा को भी प्रकाशित होने के लिए किसी ज्ञानान्तर प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती। वह तो स्वरूपतः स्वयंप्रकाश है–

"संवेदनस्वरूपत्वात्संवेदानान्तरापेक्षा च सम्भवति।
यथा प्रकाशस्य प्रकाशान्तरापेक्षाया न संभवस्तद्वत्"।[8]

प्राणों और बुद्धिवृत्तियों के भीतर व्याप्त विज्ञानमय ज्योतिस्वरूप पुरूष, लोक एवं परलोक में संचरण करते हुए प्राणवृत्ति के रूप में चेष्टा करता है और (शरीर तथा इन्द्रियरूप) मृत्यु रूपों का अतिक्रमण भी करता है– **"पुरुषः आकाशवत् सर्वगतातत्वात् पूर्ण इति पुरुषः निरतिशयं चास्य स्वयंज्योतिष्टम् सर्वावभासकत्वात्"।**[9] अपने स्थान पर रहते हुए भी यह पुरुष सतत् गतिमान रहने वाली वस्तुओं को परिमित कर देता है। सृष्ट्युत्पत्ति प्रक्रिया की तुलना अग्नि से निकलती हुई स्फुलिंग से की गई है–

"मुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिंगाः सहस्त्रशः प्रभवन्ते सरूपाः॥
तथाक्षराद्विविधा सोम्य भावाः प्रजायन्ते चैवापि यन्ति"।[10]

Scanned with CamScanner

सूर्यादि को भी अपने अस्तित्त्व प्रकाशन के लिए इस पुरुष की अन्तस्थ सर्वव्यापक चिज्ज्योति की अपेक्षा है जो आदित्यादि से व्यतिरिक्त ज्योति है–

"सर्वादिश ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक्। प्रकाशयन् भ्राजते यद्वनड्वान्।
एवं स देवो भगवान्। वरेण्यो योनिस्वभावानधितिष्ठत्येकः"।[11]

जिस प्रकार अन्धकार में समस्त पदार्थ सम्मुख होते हुए भी दीपक के प्रकाश से युक्त होकर उपलब्ध होते हैं, उसी प्रकार सारे जागतिक पदार्थ बुद्धिस्थ चित् विज्ञान के प्रकाश से विशिष्ट् होकर ही प्रकाशित होते हैं। प्राण के रूप में हृद्यन्त चेतनतत्त्व से चेतनावान सा होकर यह देहेन्द्रिय संघात सूर्य के प्रकाश में स्थित् घट के समान प्रकाशित रहता है–

"ज्योतिरादिभिरग्न्याद्यभिमानिनीभिर्देवतारभिरधिष्ठितं"।[12]

गीता का भी अभिमत है कि जो प्रकाश करने वाला तेज शशांक, चन्द्रमा में अन्तर्भूत है ओर जो अग्नि में वर्तमान है, उस तेज को तू मेरी अपनी ज्योति समझ–

"यद् आदित्यगतं तेजः चैतन्यात्मकं ज्योतिः यत् चन्द्रमसि।
यत च अग्नौ तत् तेजो विद्धि मामकं मदीयं ज्योतिः"।[13]

देवताओं सहित समस्त प्राणों में अन्तर्निहित शक्ति ब्रह्म की ही पराशक्ति है। श्रुति कहती है कि ब्रह्मतत्व इन्द्रादि देवताओं के सम्मुख विद्युत की तरह अन्धकार को चीरकर प्रकट हुआ था–

"यदेतद्विद्युतो व्युद्यतदाउ इतिन्यमीमिषदाउ"।[14]

अंधकार को विदीर्ण करने की शक्ति केवल प्रकाश में ही अनुस्यूत है। सबका प्रकाशक और स्वयं दूसरे से अप्रकाश्य होने के कारण इसकी स्वयंप्रकाशता सर्वोपरि है। स्वयंप्रकाशता का तात्पर्य है– इन्द्रिय गोचर न होने के बावजूद भी जिसकी अपरोक्षानुभूति हो। चित्सुखाचार्य कहते हैं कि स्वयंप्रकाशत्व का साक्षात् अर्थ अवेद्यत्वविशिष्ट् अपरोक्षव्यवहार योग्यत्व शक्ति से है–

"अवेद्यत्वे सत्यपरोक्ष व्यवहारयोग्यतायास्तल्लक्षणत्वात"।[15]

यह अमृत ज्योति सभी देवताओं की आयु है क्योंकि इसी ज्योति के कारण वे दीर्घकाल तक द्योतित होते रहते हैं। आद्य आचार्य यज्ञ के विषय में कहते हैं कि यज्ञ, पुरुष में अन्तर्भूत प्रकाशतत्व का ही रूप है– **"पुरुषो वाव यज्ञः"।**[16] इस परमपुरुष प्रकाश के भय से सूर्य गर्मी देता है, अग्नि तपता है, इन्द्र, वायु तथा मृत्यु अपने कार्यों में सदैव निरत रहते हैं–

"भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः"।[17]

ज्ञाता, ज्ञान व ज्ञेय के विभाजन से रहित वही प्रकाश पुरुष **"प्रज्ञानंब्रह्म"** **"विज्ञानंब्रह्म"** तथा **"विज्ञानमय"** के रूप में स्वरूपतः अद्वैत तत्व है। विभाग वहाँ संभव है जहाँ द्वैत हो अर्थात् जहाँ एक ज्ञाता हो तथा दूसरा ज्ञान का विषय बन सके। जैसे नमक

Scanned with CamScanner

का एक टुकड़ा भीतर–बाहर सभी ओर से नमकीन ही होता है उसी प्रकार वह परमात्मा भी सर्वतोभावेन प्रकाश पुंज प्रज्ञाघन है–

"स यथा सैन्धवद्यनोऽनन्तरोऽबाह्य कृत्स्नो रसघन।
एवैवं व अरेऽयमात्माऽनन्तरोऽबाह्य कृत्स्नः प्रज्ञानघन एवं"।[18]

जो धनीभूत सत्, चित और आनन्द है, अन्तरात्मा, एक रस, परिपूर्ण, अनन्त और सर्वव्यापक है, ऐसा एक नित्य, अक्रिय और अद्वितीय ब्रह्म ही सत्य वस्तु है जिसमें कोई नाना पदार्थ नहीं है–

"सद्धनं चिदधनं नित्यमानन्दधनमक्रियम्।
एकमेवाद्वयं नेह नानास्ति किंचन"।[19]

इस चैतन्य रूपी पुरुष को ग्यारह दरवाजों वाला बताया गया है, जिसमें दो कान, दो नेत्र, दो नाक, एक मुख, एक सिर में स्थित् ब्रह्मद्वार, नाभि, मूत्रद्वार तथा गुदा समाहित है। शांकरभाष्य में ये सभी पुरुष के द्वार बताये गये हैं। इस देह में रहते हुए भी इसके दुःखादि में इस तत्व की संलिप्तता शून्य है– **"न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः"।**[20] जैसे घड़े के धर्मों से आकाश का कोई सम्बन्ध नहीं होता, वैसे ही यह तत्व जड़ रूपी देह के किसी भी स्थल में लोटता रहे, इसके दैहिक धर्मों से सदैव निर्लिप्त ही रहता है–

"जले वापि स्थले स्वापि लुठत्वेष जड़ात्मकः।
नाहं विलिप्ये तद्धर्मैर्घटधर्मैर्नभो यथा"।[21]

सूक्ष्म आकाश की भाँति सर्वत्र व्याप्त ब्रह्म दैहिक धर्म गुणातीत है–

"यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते"।[22]

प्रतिबिम्बवाद व अवच्छेदवाद इसी प्रत्यक्चैतन्य की विवर्तात्मक व्याख्या है।

उपनिषदों में इस प्रकाश तत्व को भूमा कहा जाता है। भूमा ही सुख तथा आनन्द का आकर है। जहाँ दृष्टिभेद, श्रवणभेद तथा ज्ञानभेद की शून्यता है वही भूमा है। दुःख के बीजभूत तृष्णादि का अतिक्रमण करने वाला भूमा महान, निरतिशय, सुखरूप है–

"यो वै भूमा महन्निरतिशयं बहिवतिपर्यायास्तत्सुखम्"।[23]

आनन्दमय आत्मा ही सबको आनन्द व सुख देने वाला है–

"एवमानन्दशब्दस्य बहुकृत्वो ब्रह्मण्यभ्यासानन्दमय आत्मा ब्रह्मेति गम्यते
(आनन्दमयोऽभ्यासात्)"।[24]

इस संसार को ब्रह्म का विवर्त माना गया है। सूक्ष्म दृष्टि में विवर्त मूल कारण के प्रकाश का ही द्योतक है। इस शक्तिमान तत्व के प्रकाश में विवर्तात्मक जगत् के सम्पूर्ण उपमान प्रकाशित हो रहे हैं–

"तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति"।[25]

वह सबका परमगति, परमधाम है। जो अक्षर नामक अव्यक्तभाव है, वही परमगति है। जिस प्रकार खिलौना मिलने पर बालक अपनी भूख और शारीरिक व्यथा को भी भूलकर

Scanned with CamScanner

उससे खेलने में लगा रहता है उसी प्रकार अहंकार और ममता से निर्मूल तत्वज्ञानी पुरुष आत्मबोध कर परमगति, परमधाम परमात्मा में आनन्दपूर्वक रमण करता है–

"क्षुधां देहव्यथां त्यक्त्वा बालः क्रीडति वस्तुनि।
तथैव विद्वान रमते निर्ममो निरहं सुखी"।[26]

आत्मज्ञान की प्राप्ति पश्चात् ज्ञानी को अन्य किसी भी वस्तु की अपेक्षा नहीं रहती। सभी द्वन्द्वों से मुक्त हुई उसकी व्यष्टिगत आत्मिक ज्योति संवर्तरूप ब्रह्मात्म प्रकाश में विलीन होने लगती है।

आचार्य शंकर कहते हैं कि इस विशाल विश्व के भीतर देश–काल से विभक्त, भूत, वर्तमान तथा अनागत में होने वाली कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो आत्मा से पृथक रह सके अर्थात् आत्मा से भिन्न उनका अस्तित्व नहीं है–

"नहि आत्मनोऽन्यत् तत्प्रविभक्तं देशकालं भूतभवत् भविष्यद्धावस्तु विद्यते।
यदा नामरूपे व्याक्रियते"।[27]

माया से निरवच्छिन्न यही परमात्मा बोधस्वरूप, जानने–पहचानने एवं तत्वज्ञान करने योग्य है। सकल ब्रह्माण्डीय चराचर के हृदयदेश रूपी गर्भ में स्थित् वह परमेश्वर सहस्र ज्योतियों का भी प्रकाशक परंज्योति है– **"ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते। ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानमयं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्"**[28] नाम, रूप, जाति से व्याकृत जागतिक पदार्थ भले विभिन्न प्रतीत हो रहे हों परन्तु उनके भीतर चैतन्यरूपी एक ही परमात्मा का प्रकाश अंश प्रसारित हो रहा है। जगत् के पदार्थ कार्यरूप हैं जिनका कारण स्वयं ब्रह्म है। जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय रूपी कलाएँ उस चैतन्यरूपी महाकलाकार की मात्र आंशिक कला है–

"चैतन्याव्यतिरेकेण एव हि कलाः जायमानाः तिष्ठन्त्यः प्रतीयमानाश्च सर्वदा लक्ष्यन्ते"।[29]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ब्र0सू0शा0भा0 1.1.11
2. तै0उप0शा0भा0, पृ0 98 (गीता प्रेस)
3. गीता शा0भा0, 2.15
4. कठ0उप0 2.1.13
5. बृह0उप0शा0भा0 3.4.2
6. बृ0उप0शा0भा0 4.3.6
7. गीता शा0भा0, 15.6
8. केन0उप0 शा0भा0, 2.4
9. बृह0उप0शा0भा0 43.7
10. मु0उप0शा0भा0 2.1.4
11. श्वेता0 उप0शा0भा0 5.4
12. ब्रू0सू0शा0भा0 2.4.13
13. गीता शा0भा0 15.12
14. केन0उप0 4.4
15. चित्सुखाचार्य कृत तत्त्वप्रदीपिका, पृ0 16

Scanned with CamScanner

16. छा0उप0 3.16.1
17. कठ0उप0 2.3.3
18. ब्र0सू0शा0भा0 4.5.13
19. विवेकचूणामणि–466
20. कठ0उप0 2.2.11
21. विवेकचूणामणि 510
22. गीता 13.32
23. छा0उप0शा0भ0 7.23.1
24. ब्र0सू0शा0भा0 1.1.12
25. कठ0उप0
26. विवेकचूणामणि 538
27. ब्र0सू0शा0भा0 2.1.6
28. गीता 13.17
29. प्रश्न0उप0शा0भा0 6.2

Scanned with CamScanner